काल चक्र

भारतवर्ष के प्रायः सब दर्शनों और प्रसिद्ध धर्म ग्रन्थों में काल के लक्षणों पर थोड़ा बहुत विचार किया गया है। परन्तु विषय इतना कठिन, गम्भीर और सूक्ष्म है, और इन ग्रन्थों में हमें इस पर सामग्री इतनी थोड़ी मिलती है, कि इस सारे विषय को भली भांति फिर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

पहले प्रश्न यह उठता है कि काल शब्द बना कैसे? और इसके अर्थ क्या हैं?

काल शब्द की व्युत्पत्ति

काल शब्द को प्रायः कल् धातु से निकला हुआ माना जाता है। यह कल् धातु पाणिनीय धातुपाठ में तीनवार आया है। पहले भ्वादिगण में, जहाँ कल् के अर्थ हैं, "आवाज़ निकालना, या गिनना"†। फिरदो बार चुरादिगण में पढ़ा गया है। पहले "फैंकना, लेजाना"‡ अर्थ में, और फिर "चलना या गिनना"+ इस अर्थ में इन अर्थों के आधार पर काल शब्द के यह अर्थ किये जा सकते हैं:—

---

† कल् शब्द संख्यानयोः।

‡ कल् क्षेपे।

+ कल् गतौ संख्याने च।

(१) काल वह है जिससे वस्तु गिनी या मापी जाती है† ।

(२) काल वह है जो वसन्त आदि प्रवृत्तियों से सारी संसार मूर्तियों को हर एक क्षण में भिन्न भिन्न अवस्था रूपसे तबदील करके चलाता है ।❋

इन अर्थों के अतिरिक्त काल शब्द को साक्षात् "कला" शब्द के साथ जोड़ा गया । कला समय का एक विशेष भाग है, जिसका परिमाण भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न दिया गया है,जैसे कला=१ मिनट ३६ सैकण्ड इत्यादि,सो कलाओं के समूह को काल कहते हैं ।+

अब प्रश्न उठता है कि इन अर्थों में से किसको ग्रहण किया जावे ? हमारा विचार है कि ऐतिहासिक पक्ष से यदि देखा जावे, तो "गिनना या मापना" यह अर्थ पहले आना चाहिये । काल का प्रारम्भ पहिले व्यवहारिक जगत् में होता है, और व्यवहार में काल के यह अर्थ पहले उदय होने चाहियें । इसके पीछे कुछ दार्शनिकों को यह सूझा कि संसार के व्यवहारों को नियमपूर्वक चलाने वाले किसी द्रव्य की आवश्यकता है, और वह द्रव्य काल है । इस लिये यह अर्थ पीछे अनुभव हुआ । मुख्य अर्थ यही निकला कि "जिस से वस्तु गिनी या मापी जाती है ।"

---

† कल्यते वा परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति कालः ।
अभिधान राजेन्द्र, देखो शब्द "काल" ॥

❋ घटीयन्त्र सदृशी शिवंसन्तादिप्रवृत्तिभिः सकला मूर्तीस्तदवस्था रूपेण प्रतिक्षणं परिणामैः कलयति (प्रेरयति) इति काल इत्युच्यते ।
नागेशकृत वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा, पृष्ठ ८११,

+ कलानां समयादिरूपाणां समूहः कालः ।
अभिधान राजेन्द्र शब्द "काल" ॥

परन्तु ध्यान रहे कि यह काल का सम्पूर्ण अर्थ नहीं हो सकता। यह काल की व्याख्या या उसके स्वरूप का निश्चय नहीं है। यह अर्थ केवल काल शब्द की बनावट पर प्रकाश डालता है। मंजूषाकार ने काल शब्द का यह लक्षण किया है—'भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान आदि का असाधारण हेतु''†, या "सब तबदीलियों का हेतु"*, या "चिर और शीघ्र व्यवहारों का हेतु"+।

इन तीन लक्षणों में से पहले दो लक्षण तो विवाद के विषय हैं, क्योंकि सब लोगों ने अभी तक स्वीकार नहीं किया कि भूत, भविष्यत् वर्तमान आदि का कोई असाधारण हेतु अवश्य है, अथवा तबदीलियों का कोई विशेष हेतु केवल काल रूप में होना चाहिये। इसलिये तीसरा लक्षण "चिर और शीघ्र व्यवहारों का हेतु" प्रायः बहुत लोगों को स्वीकृत होगा।

ऊपर काल का मोटा लक्षण किया गया है। परन्तु वास्तव में काल का क्या स्वरूप है, इस पर अनेक मतभेद हैं। पहले हम दर्शनों को लेंगे, और फिर वेदादि धार्मिक ग्रन्थों को। वैशेषिक दर्शन के मत में काल एक अतिरिक्त द्रव्य है, और इसके लिंग 'पहले, पीछे, एक ही समयमें, चिर शीघ्र' ×

काल का स्वरूप वैशेषिक दर्शन के मत में

---

† भूतादिव्यवहारासाधारणहेतुत्वम्—वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा पृ० ८४०

* सकलपरिणामहेतुत्वम् मं० पृ० ८४०।

+ चिरक्षिप्रव्यवहारहेतुत्वम् मं० पृ० ८४०।

× वैशेषिकदर्शन—अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरंक्षिप्रमिति काललिंगानि २।२।६।

यह हैं। संसार में होने वाले प्रत्येक वृत्तान्त की बावत यह कहा जा सकता है कि यह वृत्तान्त किसी दूसरे वृत्तान्त से पहले है, या उससे पीछे है, या उसके समान काल में होने वाला है, या चिर से होने वाला है, या शीघ्र होने वाला है।

जब हम किसी बूढ़े मनुष्य को देखते हैं, तो कहते हैं कि इसकी आयु ७० वर्ष की है, परन्तु वर्ष की कल्पना का आधार सूर्य की गति है। इससे हमें यह अनुभव हो सकता है कि सूर्य की गति इस मनुष्य के जीवन में कितनी वार हुई है। परन्तु सूर्य की गति सूर्य में है† न कि उस मनुष्य में‡। इसलिये हमें एक ऐसा अतिरिक्त द्रव्य कल्पना करना पड़ेगा, जो कि सूर्य की गति को मनुष्य के शरीर के साथ जोड़ता है। यही अतिरिक्त द्रव्य काल कहलाता है। यह द्रव्य शरीर का समवायिकारण नहीं हो सकता। समवायि कारण वह है जो किसी मूर्त द्रव्य के अंश में कारणरूप से सदा रहता है, जैसे कपड़े में तन्तु। काल इस प्रकार की सामग्री नहीं जिससे मनुष्य का शरीर बना हो। परन्तु काल वह द्रव्य है जिसका शरीर और सूर्यके साथ संयोग होने से 'पहले'

---

† तथा च सूर्य क्रियायाः सूर्य समवेतत्त्वेन सा पिंडे न साक्षात् सम्बन्धेन संभवति, इति परम्परा सम्बन्धार्थं तद्घटकतया कालः स्वीकार्यः—मंजूषा पर कुञ्जिका टीका, पृ० ८४२।

‡ सूर्योदयास्तमयक्रिया प्रचयाल्पत्व बहुत्व विशिष्टात् पिंडादेव परापरत्वे भविष्यतः कृतमत्र द्रव्यान्तरेण कालेनेति चेत्। न, सवितु समवेतायाः क्रियायाः पिंडेनासंबन्धात् न्यायवार्त्तिकतात्पर्य टीका, पृष्ठ २८०।

'पीछे' का ज्ञान होता है।†' इसमें मुख्य कारण काल और सूर्य का संयोग है, और यह 'पहले' 'पीछे' ज्ञान का असमवायि कारण है।‡ "पीछे' होने वाले द्रव्य के साथ सूर्य की गतियों का संयोग काल करता है, और काल ही सूर्य की गतियों को उस द्रव्य के साथ जोड़ता है। ऐसा जोड़ने वाला द्रव्य चेतन नहीं हो सकता, आत्मा की तरह चेतन पदार्थ जो कि सब उपाधियों से मुक्त हो, एक पदार्थ के धर्म को दूसरे स्थान में नहीं ले जाता। परन्तु अचेतन द्रव्य एक पदार्थ के धर्म को दूसरे स्थान में ले जाता देखा जाता है, जैसे पुष्प के गन्धको वायु ले जाती है। ऐसे ही यदि सूर्य चलता है; तो 'पहले' पीछे का ज्ञान कभी उत्पन्न नहीं हो सकता, जबतक इस सूर्य की गति को ले जाने वाला, अर्थात् इस ज्ञान को उत्पन्न करने वाला कोई पदार्थ न हो। सो जो द्रव्य इस प्रकार की क्रिया का बहुत से पदार्थों मे सम्बन्ध कर देता है, वह काल है।+ जब हम संसार के किसी कार्य को देखते हैं, तो वह

---

†' किन्तु पिंडमार्तण्डोभय संयुक्तकिंचिद्विभुद्रव्य संयोग एवापरत्वादिकार्येऽसमवायिकारणम्—जयनारायणकृत विवृति [वैशेषिक सूत्र २ । २ । ६ पर]

‡ तथा च कालस्यैव मार्तण्ड संयोगः परत्वासमवायि कारणम्, काल एव मार्तण्ड क्रियोपनायकः। शंकर मिश्रकृत उपस्कार [वैशेषिक सूत्र २ । २ । ६ पर]

+ तत्र यद्द्रव्यं योऽयमपरस्तेन तपनेन च संसृज्यते, अपरस्य तपन क्रिया सम्बन्धं करोति तपन परि परिस्पन्दांश्च तत्रोपनयति तद्द्रव्यं कालः आत्मा तु चेतनः सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो न खल्वप्यन्यस्य धर्ममन्यत्रोपनयति। अचेतनं तु द्रव्यमन्यस्य धर्ममन्यत्रोपनयद् दृष्टम्, यथा पुष्पस्य गन्धं

कार्य हमको अनेक पक्षों और अनेक सम्बन्धों वाला प्रतीत होता है। जैसे एक घड़ा यदि बना हुआ हो तो हम किसी देश के साथ उसके सम्बन्ध को जोड़ते हैं। ऐसे ही जब हम कहते हैं "अब घड़ा तैयार हो गया" तब "अब" शब्द इस घड़े रूप कार्य के कालिक सम्बन्ध का परिचय देता है। तब यह कार्य कालिक सम्बन्ध से प्रतीत होता है, और इस कालिक सम्बन्ध वाले कार्य का अधिकरण-रूप से निमित्त काल है। इस पक्ष से कहा जा सकता है कि सब कार्यों का कारण काल है, क्योंकि प्रत्येक कार्य का सम्बन्ध काल के साथ अवश्य है, और काल उस कार्य का आधार है, क्योंकि जब हम कहते हैं कि अब घड़ा तैयार हो गया, तो "अब" की प्रतीति अवश्य किसी आधार को जतलाती है।[†] यही आधार काल है, और इसको जगत का आश्रय कहा गया है। यह काल द्रव्य अखंड और विभु है, और केवल उपाधि द्वारा भिन्न भिन्न

वायुरिति, किंचिच्च कदाचित्स्पन्दतेकिंचिच्च कदाचिदित्यन्य परिस्पन्दस्यान्यत्रोपनयमन्तरेण परापर-व्यवहारो नोपपद्यते। तद्द्रव्यं तया क्रियया भूयसां सम्बन्धं करोति तद्द्रव्यं कालः—चन्द्रकान्तकृत भाष्य [वैशेषिक सूत्र २।२।६ पर]

† जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः।
परापरत्वधीहेतुः क्षणादिःस्यादुपाधितः॥

इदानीं घट इत्यादि प्रतीतिः सूर्य परिस्पन्दादिकं यदा विषयी करोति। तदा सूर्यपरिस्पन्दादिना घटादेः सम्बन्धो वाच्यः स च सम्बधः संयोगादिर्न संभवतीति काल एव सम्बन्ध घटकः कल्प्यते। कालिक सम्बन्धावच्छिन्न कार्यत्वाच्छिन्न कार्यतानिरूपितमधिकरणतया निमित्तत्वं काललक्षणम्॥ [दिनकरी न्याय मुक्तावली ४२ पर]

क्षण मुहूर्त आदि के रूप में प्रतीत होता है। वास्तव में इसका खंड नहीं हो सकता।

काल एक अखण्ड द्रव्य है, वैशेषिक का यह मत मंजूषाकार नागेश ने इस प्रकार किया है, कि यदि काल को अखण्ड द्रव्य माना जावे तो उद्देश्य की हानि होगी। कालकल्पना का उद्देश यह था कि वस्तुओं को मापा जावे कि वह कब हुई। परन्तु अखण्ड द्रव्य द्वारा खण्ड रूप पदार्थ और मुहूर्त्त क्षण आदि मापे नहीं जा सकते।† यह तब ही हो सकता है, यदि मापने वाला द्रव्य खण्ड वाला है। यदि वैशेषिक मत वालों का उत्तर यह हो कि उपाधि द्वारा खण्ड पदार्थ मापे जा सकेंगे तो अखण्ड और माप रहित पदार्थ की उपाधि नहीं हो सकती।‡ इसलिये काल अखंड द्रव्य नहीं हो सकता।

वैशेषिकमत खंडन

परन्तु हमारे विचार में मंजूषाकार के इन आक्षेपों से वैशेषिक मत को कोई हानि नहीं है। वैशेषिक सूत्र से प्रतीत होता है कि कालकल्पना का उद्देश्य मापना मुख्य नहीं है। मुख्य उद्देश्य "पहले" "पीछे" आदि अपेक्षितबुद्धि की प्रतीति है। यह उद्देश्य बड़ा भारी है, और सारे

वैशेषिकमत की पुष्टि

† वैशेषिकमतं निराकरोति—अखण्डः काल इति मते तस्य परिच्छेदकत्वासंभवात्। कुंजिका टीका (मंजूषा पृ० ८४८ पर)।

‡ इदानीमित्याद्यखिलव्यवहाराणां खण्डकालमात्रविषयत्वम्। परिच्छिन्नसूर्यक्रिया खण्डकालस्यैवोपाधिः। अपरिच्छिन्नाया उपाधित्वं न सम्भवति कलाटीका (मंजूषा पृ० ८२१ पर)।

संसार में इसकी व्याप्ति है। क्षण मुहूर्त्तादि उपाधि द्वारा पीछे हो सकते हैं और यह आक्षेप भी ठीक नहीं है कि अखंड और मापरहित पदार्थ की उपाधि नहीं हो सकती। आत्मा, ब्रह्म आदि अखंड और मापरहित माने जाते हैं, परन्तु तो भी उनकी उपाधि मानी जाती है।

पाठक इससे यह न समझें कि हमें वैशेषिक मत में कोई त्रुटि उपलब्ध नहीं होती। त्रुटियां इस में अवश्य हैं, जिन पर हम धार्मिक ग्रन्थों के खंड में विचार करेंगे, परन्तु मंजूषाकार के आक्षेप ऐसे बलवान् नहीं हैं।

दीधितिकार के मत में काल को अतिरिक्त पदार्थ मानने की कोई आवश्यकता नहीं। दिशा और काल का दोनों व्यवहार ईश्वर द्वारा हो सकता है। और दिशा और काल की उपाधियों का व्यवहार भी केवल ईश्वर की भिन्न २ उपाधियों द्वारा हो सकता है। इसलिये ईश्वर ही को सब कालिक सम्बन्ध वाले कार्यों का कारण मानना पर्य्याप्त है। अथवा अतिरिक्त काल के स्थान में हम केवल क्षणों को ही अतिरिक्त पदार्थ मान लेंगे। उन्हीं क्षणों द्वारा संसारके सारे व्यवहार हो जावेंगे।† अतिरिक्त काल कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं।

दीधितिकार का मत

---

† दीधिति कारस्तु दिक्कालौ नेश्वरादतिरिक्तौ, प्राच्यां घट इदानीं घट इत्यादि व्यवहारस्येश्वरात्म विभु विषय कत्वेनैवोपपत्तेः, उपाधि भेदादेकया दिशा एकेन कालेन च यथा भवतां बहूनां व्यवहाराणामुपपत्तिस्तथाऽस्माकमपि एकेनेश्वरेणागमानुमानाभ्यां सिद्धेन सर्वेषामेव तादृशव्यवहारा-

परन्तु हमें दीधितिकार के मत में भी त्रुटि प्रतीत होती है।

दीधितिकार के मत में त्रुटि

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त में जाकर ब्रह्म या ईश्वर कारणों का कारण मानना पड़ता है। परन्तु व्यावहारिक जगत में काल ऐसा पदार्थ है, जिसको अतिरिक्त सामान्य कारण माने बिना संसार के प्रत्येक व्यवहार टूटे फूटे प्रतीत होते हैं, जैसा कि हम आगे जाकर विचार करेंगे। आजकल के विज्ञान में भी काल को प्रत्येक कार्य पदार्थ का आवश्यक अंश माना गया है। प्रत्येक कार्य पदार्थ चार परिमाणों (Four-dimensional) वाला है, जिसका चौथा परिमाण काल है और तीन परिमाण दिश् हैं। दूसरा जो क्षणवाद दीधितकार ने बताया है यह योग का मत प्रतीत होता है, इसलिये हम इस पर योग के खंडमें विचार करेंगे।

सांख्यमत में भी काल कोई अतिरिक्त पदार्थ नहीं है। काल

सांख्यमत में काल का स्वरूप

दो प्रकार का है, एक नित्य काल, दूसरा खंडकाल। नित्यकाल प्रकृति का गुण विशेष है;[१] और खंडकाल आकाश की उपाधियों

णामुपाधि भेदादुपपत्तिः संभवति, अथवा क्षणा एवातिरिक्त इदानी मित्यादि व्यवहार विषया स्तैरेव तादृशाः सर्वे व्यवहारा उपपादनीय किमतिरिक्तेन कालेनेति। शास्त्रार्थ संग्रह; जयनारायण भट्टाचार्य कृत, वैशेषिकदर्शन (मुम्बई १८१२) पृ० ३८२।

[१] दिक्कालवाकाशादिभ्यः। सांख्यसूत्र २। १२ नित्यौ यौ दिक्कालो तावाकाशप्रकृतिभूतौ प्रकृतेर्गुणविशेषावेव। विज्ञानभिक्षुकृत भाष्य।

द्वारा उत्पन्न होता है।† शोक है कि सांख्य के इस सूक्ष्म अभिप्राय के विषय में हमें सामग्री बहुत थोड़ी मिली है और जब तक सामग्री पर्याप्त न हो, इस सिद्धान्त पर आक्षेप करना साहस मात्र है।

नित्यकाल वह है, जो क्षण, मुहूर्त्त आदि खंडरूपों में प्रतीत नहीं होता, और जो केवल सामान्य "पहले" "पीछे" आदि का परिचय देता है। ऐसे काल को प्रकृति का गुण विशेष मानने में कोई कठिनता तो प्रतीत नहीं होती, क्योंकि प्रकृति के साथ साथ ही उसके नियम भी हैं और यह नियम काल के अनुकूल होते हैं, इसलिये काल को भी प्रकृति के साथ जोड़ना कल्पना योग्य था। परन्तु व्यावहारिक जगत् में प्रत्येक कार्य के साथ काल का सम्बन्ध हमें मिलता है, और चाहे अन्त में जाकर वह काल प्रकृति का गुण विशेष ही हो हमें तो उसका प्रभाव इतना अनुभव होता है कि, उसको पदार्थ विशेष स्वीकार करना पड़ता है।

खंडकाल, क्षण, मुहूर्त आदि आकाश की उपाधि क्यों कल्पना की गयी ? इस विषय पर सामग्री इतनी थोड़ी है, कि इस पर प्रकाश डालना कठिन है। सांख्य ने दिशा और काल दोनों को आकाश की उपाधि द्वारा उत्पन्न माना है। यदि दिशा और काल में बहुत भेद न होता तो उनकी उत्पत्ति एक ही कारण आकाश उपाधि द्वारा कल्पित की जा सकती थी। परन्तु दिशा और काल में यह भेद अवश्य है कि दिशा-सम्बन्ध बुद्धिगोचर प्रत्ययों में नहीं होते।

---

† यौ तु खण्डदिक्कालौ तौ तु तत्तदुपाधिसंयोगादाकाशादुत्पद्येत इत्यर्थ—भाष्य (२। १२ पर)

यदि मुझे कोई संकल्प उत्पन्न हुआ है तो यह संकल्प किस देश या दिशा में है यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह संकल्प किसी संकल्प के पहले या पीछे अवश्य है ।† अर्थात् प्रत्येक संकल्प के साथ कालिक सम्बन्ध है, परन्तु दिशा सम्बन्ध नहीं । जब दिशा और काल इतने भिन्न हैं, कि काल सम्बन्ध सर्वत्र व्यापक है, और दिशा सम्बन्ध केवल बुद्धि से भिन्न पदार्थों में देखा जाता है, तो उनको एक ही कारण—आकाशकी उपाधि—बताने के लिये हेतु प्रतिपादन करना होगा, कि क्यों एक ही सामान्य कारण आकाश से ऐसे भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न हुए ।

योगशास्त्र का मत

योगशास्त्र के मत में काल केवल क्षण है । और वह अकेला क्षण है । वह उत्पन्न होते ही नाश हो जाता है । और फिर दूसरा क्षण उत्पन्न होता है । वह क्षण भी एक क्षण ही रहता है । फिर उसका भी नाश होजाता है । क्षणों का समुदाय वास्तव में एक काल में नहीं हो सकता, इसलिये क्षणों के क्रम रूप से जो काल माना जाता है,वह कल्पित है, क्योंकि एक ही क्षण में दो क्षण नहीं हो सकते ।‡ इस क्षणवाद के दो हेतु दिये गये हैं—

† "It is commonly held that all events have temporal relations to each other, but that psychical relations have no spacial relations." C. P. Broad. "Time" in the Encyclopaedia of Religion and Ethics.

‡ क्षणतत्क्रमयोर्नास्ति वस्तु समाहार इति । बुद्धिसमाहारो मुहूर्ता—

(१) जब हम कहते हैं कि "अब घड़ा तैयार हो गया है" तो 'अब' का विषय खंडकाल ही हो सकता है, जिसमें कारण और कार्यक्षण की कल्पनासे ही सिद्ध हो सकते हैं। यदि क्षणको आधार न माना जावे, तो "अब" का ज्ञान नहीं हो सकता।†

(२) वैशेषिक वाले महाकाल को और सांख्य वाले आकाश को उपाधि द्वारा क्षणादि व्यवहार का आधार मानते हैं। परन्तु महाकाल और आकाश दोनों स्थिर हैं, और क्षण अस्थिर है। अस्थिर वस्तु स्थिर वस्तु की कैसे उपाधि हो सकती है?‡ इसलिये क्षण ही काल है। इस तत्ववाद के विषय में विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि बौद्धमत और योगमत में यह भेद है कि योगमत

होरात्रादयः। स खल्वयं कालो वस्तु शून्योऽपि बुद्धि निर्माणः शब्द ज्ञानानुपाती लौकिकानां व्युत्थित दर्शनानां वस्तुस्वरूप इवावभासते। क्रमश्च क्षणानन्तर्यात्मा तं कालविदः काल इत्याचक्षते योगिनः। न च द्वौ क्षणौ सह भवतः। क्रमश्च न द्वयोः सहभुवो रसंभवात्। पूर्वस्मादुत्तरस्य भाविनो यदानन्तर्यं क्षणस्य स क्रमः। तस्माद्वर्तमान एवैकः क्षणो न पूर्वोत्तरक्षणाः सन्तीति। तेनैकेन क्षणेन कृत्स्नो लोकः परिणाम मनुभवति॥

पतञ्जलि कृत योगसूत्र ३,५२ पर व्यास का भाष्य।

† इदानीमित्याद्यखिल व्यवहाराणां खंडकालमात्र विषयकत्वात् कार्य-कारणभावादीनामपि क्षणघटितत्वात्—विज्ञानभिक्षुकृत योगवार्तिक, पातञ्जलिकृत योगसूत्र ३,१२ पर।

‡ स्थिरेण केनाप्युपाधिना महाकालाकाशाभ्यां क्षणव्यवहारस्यासंभवात्। त्रयाणामपरैः स्थिरत्वाभ्युपगमान्न तैः क्षण व्यवहारः संभवति—श्रीपिमानन्दकृत सांख्यतत्व विवेचन पृष्ठ ४८, ८६।

केवल क्षण को स्थिर मानता है, परन्तु बौद्धमत सब पदार्थों को क्षणमात्र रहने वाला मानता है।†

योगमत पर विचार

हमको मानना पड़ेगा कि योगमतका क्षण-वाद बड़े सूक्ष्म रूप से प्रगट किया गया है और यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि काल की प्रतीति में बहुतसा अंश मनुष्य की कल्पना है। परन्तु "पहले" "पीछे" होने वाले क्रम क्या केवल मनुष्य की बुद्धि से उत्पन्न होते हैं? क्या व्यावहारिक जगत् में मनुष्य को वह इस क्रम से प्रतीत नहीं होते? हम तो वैशेषिक मत के अनुसार यह अवश्य कहेंगे कि "पहले" "पीछे" यह क्रम ही काल का सार है। यदि इस सार को न माना जावे, तो केवल क्षण को काल कहना निष्फल है। क्षण तो काल का एक सूक्ष्म परिमाण है। यह उस काल का अंश है। अंशी और अंश एक नहीं होसकते। अंशी वह मानना चाहिये जिसमें छोटे बड़े अंश सब आ जावें, परन्तु क्षण तो केवल छोटे से छोटे अंश को प्रगट करेगा। बड़े अंश कैसे आयेंगे?

योगसूत्र ३, १६ में कहा गया है कि एक संयम विशेषसे योगी को भूत और भविष्यत् का ज्ञान हो जाता है।‡ क्या यह भूत

---

† बौद्धमताद्यास्माकमयं विशेषो यदस्माभिर्ग्राहक प्रमाणबलात् क्षण एवास्थिर इष्यते तैस्तु क्षणमात्र- स्थाय्येव पदार्थः सर्व इष्यते—विज्ञान भिक्षु कृत योग वार्तिक योगसूत्र ३। ५२ पर।

‡ परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्—धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम्। धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र

और भविष्यत् केवल योगी की कल्पना में है? भूत और भविष्यत् यदि वास्तव में सार पदार्थ हैं, तो अवश्य मनुष्य की कल्पना से बाहर होने चाहिये, जो कि योगी को प्रतीत होते हैं। नहीं तो भूत भविष्यत् ज्ञान का गौरव जाता रहेगा।

मीमांसा मत में भी काल वैशेषिक नित्य है। कुमारिलभट्ट कहते हैं कि वर्णों का क्रम ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत यह कालके भाग हैं। उनमे ध्वनि की उपाधियां उत्पन्न होती हैं। काल एक, विभु और नित्य है और बांटा हुआ प्रतीत होता है। जैसे वर्ण नित्य और सर्वगत होता हुआ भी दीर्घादिरूप में बांटा हुआ प्रतीत होता है वैसे ही काल भी सूर्य गति आदि उपाधिके वश में भिन्न भिन्न प्रतीत होता है।[†]

मीमांसा मत में काल का लक्षण

मीमांसा में एक और विचार भी प्रगट किया गया है, जो कि महत्त्व से भरा हुआ है। मीमांसाके मत में कोई ऐसा ज्ञान नहीं

संयमउक्तस्तेन परिणाम०त्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीतानागतज्ञानं तेषु सम्पादयति। योगसूत्र ३, १६ और उस पर व्यासभाष्य।

[†] अनुपूर्वी च वर्णानां ह्रस्वदीर्घप्लुताश्च ये।
कालस्य प्रविभागास्तैर्जायन्ते ध्वन्युपाधयः॥
कालश्चैको विभुर्नित्यः प्रविभक्तोऽपि गम्यते।
वर्णवत् सर्वभावेषु व्यज्यते केनचित् क्वचित्॥

यथा हि वर्णो नित्यः सर्वगतोऽपि दीर्घादिरूपेण विभक्तो भासते ध्वन्युपाधिवशात्, तथा कालोऽपि ध्वन्युपाधिवशात् भिन्नो भासत इति कुमारिलभट्टकृत श्लोकवार्तिक ६, ३०२, ३०३ पृ० ८०६।

जिसमें काल की प्रतीति न हो।† इसी सम्बन्धमें सांख्य मतपर विचार करते हुये हमने एक अंग्रेजी लेखक का भी प्रमाण दिया है कि कालिकसम्बन्ध हर एक पदार्थ के साथ है। बुद्धि में भी है, परन्तु दिशा इतनी व्यापक नहीं है। यही मत मीमांसा का भी प्रतीत होता है, जिससे सिद्ध होता है कि मीमांसकोंने कालके महत्त्व को अच्छी तरह अनुभव किया था।

वेदांतमत में काल का स्वरूप

यद्यपि वेदान्त सूत्रों में काल के स्वरूप का लक्षण नहीं किया गया, तथापि वेदान्तियों ने व्यावहारिक जगत् में काल की सत्ता को स्वीकार किया है। यद्यपि ब्रह्म उनके मत में स्वयम् क्रमरहित है, तथापि संसार में काल की प्रतीति ब्रह्म की अविद्या शक्ति का फल है।‡ अविद्या भी यद्यपि सब कालों का उपादान कारण है, परन्तु उस अविद्या में "अब है और तब नहीं", यह प्रतीति नहीं होती।+ वेदान्त में वैशेषिकसे एक भेद अवश्य है, कि

---

† मधुसूदन सरस्वती कृत अद्वैतसिद्धि पृ० २१६ कालस्य च रूपादि हीनस्य मीमांसकादिभिः सर्वेन्द्रिय- ग्राह्यत्वाभ्युपगमात्। इसपर गौड ब्रह्मानन्दी के विचार—

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते" इति मीमांसकोक्तेर्ज्ञानं सर्वं किंचित्कालावच्छिन्नमेव स्वविषयं गृह्णाति।

‡ किं चाक्रमब्रह्मविवर्तस्य विश्वस्य यदिदं क्रमेण भासनं तत्कालाविद्याशक्तिकृतमेव। वैयाकरणसिद्धान्त-मंजूषा पृ० ८४१

+ अविद्यायाः सर्वकालोपादानत्वेन तत्सम्बन्धनियमादिदानीमेव नान्यदेत्येवंरूपतदवच्छेदरहितत्वाच्च। अद्वैतसिद्धि पृ० ७५२।

वैशेषिक तो काल को नित्य मानता है, परन्तु वेदान्त के मत में काल अनित्य है, काल अविद्या कृत है, और जो अविद्या कृत पदार्थ है, वह आदि और अन्त वाला है।†

वेदान्तियों के मत में देश और काल का सम्बन्ध सदा रहता है।* अद्वैत सिद्धि ने जैसा कि ऊपर (मीमांसा मत विचार करते हुए) कहा गया है, स्वीकार किया है कि प्रत्येक बुद्धि की प्रतीति में कालके साथ सम्बन्ध है, और जब किसी पदार्थ का ज्ञान होता है तो उस पदार्थ का काल के साथ सम्बन्ध भी विषय रूप से अनुभव होता है।+

रामानुजीय वेदान्त मतमें काल भगवानकी तीन राशियोंमेंसे एक है। यह तीन शक्तियाँ अव्यक्त; काल और पुरुष हैं।× इस काल का दूसरा नाम नियति है। यह एक सूक्ष्म शक्ति है जो सबको

रामानुजीय वेंदांत मत में काल का स्वरूप

---

† अतएव "काले कालापरिच्छिन्ने ध्वंसे चाध्वंस योगिनि। नित्ये सति कथं नित्यं ब्रह्मैवेति मतं तव" इति निरस्तम्। कालस्याप्यावधिकत्वे नान्त्यावधि मत्वात्, ध्वंसस्याध्वंस प्रतियोगित्वेऽपि आद्यावधि मत्वाच्च॥ अद्वैत सिद्धि, पृष्ठ ७५३।

* न हि देशकाला सम्बन्धः कदाप्यस्ति—अद्वैतसिद्धि, पृष्ठ ४०५।

+ धारावाहिक बुद्धीनां च तत्कालावच्छिन्नार्थं विषयत्वेनाज्ञातज्ञापकत्व मस्त्येव, कालस्य सर्व प्रमाण वेद्यत्वाभ्युपगमात्॥ अद्वैतसिद्धि पृष्ठ ५६२।

× अहिर्बुध्न्य संहिता ३-२८-२६:-

भूतिः सा च त्रिधामता अव्यक्त काल पुंभेदात्॥

नियम में रखती है। विष्णु के संकल्प से प्रेरित होकर यह शक्तिरूप से पहले ही प्रगट होती है।†

शैव आगम में भी वेदान्त के समान, काल को आदि और अन्त वाला माना है। भोजराज ने इस विषय पर ऐसे वर्णन किया है कि पुरुष और जगत् को बनाने के लिये माया से पंच तत्व उत्पन्न हुए:—काल, नियति, कला, अविद्या और राग, इन पाँच तत्वों में से पहले पहल काल को ही उत्पन्न किया गया। यह काल, भूत भविष्यत् वाले इस जगत् को चलाता है।‡

शैव आगम में काल का स्वरूप

यद्यपि शैव आगम के इस वर्णन में कोई ऐसी नई बात नहीं, तथापि इस में काल को सृष्टि के तत्वों में से सब से पहले उत्पन्न हुए मान कर काल के महत्व को विशेष कर के स्वीकार किया है।

बौद्ध मत में काल प्रायः वही है जो योगशास्त्र मत में क्षणवाद रूप से ऊपर वर्णन किया गया है। तत्त्व-संग्रह के कर्त्ता शान्त रक्षित के मत में काल को अतिरिक्त पदार्थ मानना ठीक नहीं है,

बौद्धमत में काल का स्वरूप

---

† कालस्य नियतिर्नाम सूक्ष्मः सर्व नियामकः।
उदेति प्रथमं शक्ते विष्णु संकल्प चोदितः।
अहिर्बुध्न्य संहिता ३—१३

‡ तदुक्तं शैवागमे भोजराजेन :—
पुंसो जगतः कृतये मायातस्तत्त्वपंचकं भवति।
कालो नियतिश्च तथा कलाऽविद्या च रागश्च॥

क्योंकि काल को अतिरिक्त पदार्थ मानने वाले लोग काल को अंश-रहित मानते हैं। परन्तु यदि काल अंशरहित है, यदि उसका भाग कोई नहीं है, तो फिर "पहले" "पीछे" इस प्रकार की प्रतीति नहीं होनी चाहिये। यह प्रतीति तब ही हो सकती थी, यदि काल को अंश वाला माना जाता। यदि इसके उत्तर में यह कहा जावे, कि यद्यपि 'पहले' 'पीछे' की प्रतीति काल में नहीं है, परन्तु काल के सम्बन्धी पदार्थों, दीपक, शरीर आदि में है। इसलिये यह प्रतीति इन सम्बन्धी पदार्थों से हो जावेगी, तो इसके उत्तर में शान्तरक्षित यह कहते हैं कि यदि यह 'पहले' 'पीछे' की प्रतीति इन काल सम्बन्धी पदार्थों से ही हो जावेगी, तो काल की कल्पना करना निष्फल है। वह सम्बन्धी पदार्थ ही इस कार्य को कर देंगे। 'पहले' 'पीछे' का भेद काल में स्वयम् तो है नहीं, इसलिये इसकी कल्पना निष्फल है।†

नानाविध शक्तिमयी सा जनयति कालतत्त्वमेवादौ।
भाविवद्भूत मयं कलयति जगदेष कालोऽतः॥

नैयायिक मत नित्यकालनिरासाय भावीति काल तत्त्वविशेषणम्॥ बालम्भट्टकृत कलाटीका (मंजूषा पर) पृ० ८४६।

† निरंशैकस्वभावत्वात्पौर्वापर्याद्यसंभवः
तयोः सम्बन्धि भेदाच्चेदेवं तौ निष्फलौ ननु॥

स्वकारानुरूपं प्रत्ययमुत्पादयन् विषयो भवति। न च निरंशस्य पौर्वपर्यादि विभागः संभवति। येन तत्कृतं पौर्वापर्यादिज्ञानं भवेत्। अथ मतम्—दिक्काल सम्बन्धिनो भावाः प्रदीपशरीरादयः, तेषां पौर्वापर्यादि विद्यते, अत्रोत्तरमाह। 'एवं तौ निष्फलौ ननु॥ तत्त्व संग्रह पृ० २०८।

बौद्ध शान्तरक्षित ने यह आक्षेप किया है कि सम्बन्धिपदार्थों में "पहले" "पीछे" की प्रतीति स्वीकार करने से काल की अतिरिक्त कल्पना निष्फल होगी। परन्तु ध्यान रहे कि सम्बन्धियों में काल का भाग भी अवश्य है। काल भी उन सम्बन्धियों में से एक है, और कालरूप सम्बन्धी और पदार्थरूप सम्बन्धी के सहयोग से "पहले", "पीछे" यह प्रतीति होती है। काल यहाँ आधार सम्बन्ध से सम्बन्धी है। "यह घड़ा अब तय्यार हुआ", यहां "अब" की प्रतीति आधार है, जिसके सम्बन्ध में "पहले" "पीछे" की प्रतीति उस पदार्थ में होती है।

बौद्धमत पर विचार

शान्तरक्षित ने बहुत से मतों का उल्लेख किया है।† यह मत सब बौद्ध हैं और इनके विचार में भूत, भविष्यत् वर्तमान में कोई सत्ता नहीं है। द्रव्य पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। शान्तरक्षित के मत में भूत, भविष्यत् में सत्ता अवश्य है। यदि भूत में सत्ता न हो तो यह फल कैसे दे सके? परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यदि भूतमें सत्ता को अंगीकार कर लिया तो क्षणिकवाद कहां गया?

---

† कर्मातीतं च निः सत्त्वं कथं फलदमिष्यते
अतीतानागते ज्ञानं विभक्तं योगिनां च किम् ॥
न द्रव्यापोहविषया अतीतानागता स्ततः।

भावान्यथावादी, लक्षणान्यथावादी, अवस्थान्यथावादी, अन्यथान्यथिकश्चैतेषां मते,द्रव्यस्य नान्यथात्वम्। केवलमवस्थादीनां परिणामः। शान्तरक्षितमतेऽतीतानागतभावा न द्रव्यनिषेधरूपाः। अपि च अतीतं कर्म फलदं न स्याद्यदि निः सत्वं भवेत्। तत्वसंग्रह पृ० २०४।

जैन मत में काल के दो वाद हैं:—

जैन मत में काल का स्वरूप

(१) पहला वाद वैशेषिक के समान है। काल एक प्रकार का द्रव्य है, जो 'पहले' 'पीछे' इत्यादि लिङ्गों द्वारा जाना जाता है †। इसकी सिद्धि स्थानांग सूत्र में ऐसे की गई है कि वकुल, चम्पक, अशोक आदि वृक्षों में पुष्प की प्राप्ति नियम से होती है। इस नियम को चलाने वाला काल है ❋। काल के लक्षण वर्त्तना, परिणाम, क्रिया, और पहले पीछे हैं +। इन लक्षणोंमें से 'वर्त्तना' लक्षण मुख्य है। वर्त्तना का अर्थ है नये और पुराने भिन्न भिन्न रूपों से पदार्थों का सदा होना ×।

ऊपर से प्रतीत होगा कि यह मत वैशेषिक मत से कुछ भिन्न नहीं है। हाँ "नियम" और "वर्त्तना" के साथ सम्बन्ध दिखा कर हमें काल पर कुछ और प्रकाश मिलता है। काल में विशेषता केवल 'पहले' 'पीछे' ही नहीं, परन्तु उन 'पहले' 'पीछे' वृत्तान्तों

† कालः—विशिष्ट परापर प्रत्ययादि लिंगानुमेये द्रव्यभेदेसम्मति तर्क, २ कांड।

❋ अथ काल एव कथमवसीयत इति चेत्, उच्यते। वकुल चम्पकाशोकादि पुष्प प्रदानस्य नियमेन दर्शनात्। नियामकश्च काल इति। स्थानांग सूत्र १-१

+ वर्त्तना परिणामः क्रिया परापरत्वे च कालस्योपग्रहः। स च वर्त्तनादि रूपः कालो द्रव्यादनर्थान्तरम्। अभिधानराजेन्द्र—काल शब्द।

× वर्त्तनालक्षणः कालः। नवपुराणादिना तेन तेन रूपेण यत्पदार्थानां वर्त्तनं भवनमवनं स कालः अभिधान राजेन्द्रकालशब्द।

का नियम पूर्वक होना है जैसा कि धार्मिक ग्रन्थों के विचार से प्रतीत होगा। यह नियामक शक्ति, काल का एक मुख्य लक्षण है, जिसको जैन मत ने भली भाँति दर्शाया है। परन्तु 'वर्त्तना' से एक द्रव्य का अपक्षय और विनाश सिद्ध नहीं होता। हां, यदि यह माना जावे कि विनाश होकर भी एक द्रव्य फिर किसी और रूप में बदल जाता है, तो 'वर्त्तना' भी सारी अवस्थाओंमें घट जायेगा।

(२) जैन मत का दूसरा वाद जैनग्रन्थ "प्रमेय कमल मार्त्तंड" से प्रगट होता है। इस वाद के अनुसार काल क्षणों का क्रम है और काल भिन्न भिन्न हैं। यदि काल एक ही होता, तो एक काल में उत्पन्न होने वाले वृत्तान्तों की प्रतीति एक ही काल में हो जाती, और कोई वृत्तान्त भी भिन्न भिन्न समयों पर न होता। और हम देखते हैं कि कोई वृत्तान्त चिर कालमें होता है, कोई शीघ्र होता है, परन्तु काल को एक मानने से सारे वृत्तान्त एक समय ही हो जाने चाहिये, "चिर," "शीघ्र" यह बोध नहीं होना चाहिये। यदि यह कहा जावे कि काल की उपाधियों से यह भिन्न भिन्न रूप काल के प्रतीत हो जायेंगे, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि उपाधि भेद का अभिप्राय ही यह है, कि कार्य में भेद। यदि कार्य भिन्न भिन्न रूप से प्रतीत हो सकते हैं, तो जो कार्य एक समय में प्रतीत होता है, वही कार्य भिन्न भिन्न समयों में क्यों न प्रतीत हो? अर्थात् उपाधि को मानने की कोई आवश्यकता नहीं, भिन्न भिन्न कार्यों के कारण भिन्न भिन्न काल हो जावेंगे, और इन ही से निर्वाह हो जावेगा †।

† प्रतिक्षणं क्षणपर्यायः कालो भिन्नस्तत्समुदायात्मको लव निमेषादि

इसमें सन्देह नहीं कि यह युक्ति प्रबल है, परन्तु जब हम इस ग्रन्थकर्त्ता की काल सिद्धि को देखते हैं, तो उसके सिद्धान्त में विरोध सा प्रतीत होता है। काल की सिद्धि करते हुये ग्रन्थकर्त्ता संसार के व्यवहार का उदाहरण देता है। संसार में देखा जाता है कि वनस्पति आदि समय पर ही फलते हैं †। इससे प्रतीत होता है कि काल एक सर्वगत नियामक शक्ति है। इसमें बड़ा गौरव होगा यदि सहस्रों काल इन नियम पूर्वक वृत्तान्तों को चलावें।

व्याकरण शास्त्र में काल पर बहुत कुछ विचार किया गया है। इसमें दो मत प्रगट होते हैं—

व्याकरणशास्त्र में काल का स्वरूप

(१) मुख्य सिद्धान्त भर्तृहरि-कृत वाक्यपदीयका है। इस मत के अनुसार काल कोई अतिरिक्त पदार्थ नहीं है। क्रिया ही काल है। ‡क्रियाओं का क्रम सत्ता का आत्मा है। बहुत से पण्डित

कालश्च। कालैकत्वे चाखिल कार्याणामेककालोत्पाद्यत्वेनैकदैवोत्पत्ति प्रसंगान्न किंचिदयुगपत्कृतं स्यात्। चिरक्षिप्रव्यवहाराभावश्चैवं वादिनः। ननु चैकत्वेऽपि कालस्योपाधिभेदाद्भेदोपवर्तेन यौगपद्यादि प्रत्ययाभावः, तदप्ययुक्तं, यतोऽत्रोपाधिभेदः कार्यभेद एव। स च युगपत्कृतमित्यत्राप्यस्त्येवेति किमित्ययुगपत्प्रत्ययो न स्यात् पृ० १६८, १६६

† प्रतीयन्ते हि प्रतिनियत एव काले प्रतिनियता वनस्पतयः पुष्यन्तीत्यादि व्यवहारं कुर्वन्तो व्यवहारिणः– प्रमेयकमलमार्तंड पृ० १६८।

‡ वस्तुतः कालो नातिरिक्तः किन्तु क्रियैव। वैयाकरणभूषण. त्रिवेदिसम्पादित, पृ० ७५

काल को एक भिन्न पदार्थ देखते हैं, जो "पहले" "पीछे" रूप में बांटा हुआ है। परन्तु वास्तव में क्रिया की उपाधि के वश से काल "पहले", "पीछे" इस रूप में प्रतीत होता है, जिसको हम क्रम (जैसे "पहले" "पीछे") कहते हैं; यह ब्रह्म की कालशक्ति है, यह जन्म वाले पदार्थों में जन्म आदि क्रिया द्वारा "पहले", "पीछे" की प्रतीति को उत्पन्न करती है। और कोई द्रव्य रूप काल नहीं है।†

क्रिया रहित पदार्थ का काल द्वारा विभाग हो ही नहीं सकता।‡ काल इसीलिये कल्पित किया गया है कि क्रिया में भेद दर्शाया जावे। क्रमों के समूह का नाम क्रिया है। जब हम कहते हैं कि "वह भोजन पकाता है" तो पकाने में बहुत से क्रम हैं, जैसे स्थाली को चुल्लि पर रखना, आग को फूंक देना, स्थाली में जल डालना इत्यादि। यद्यपि यह क्रम भिन्न भिन्न क्षणों में होते हैं, परन्तु इन क्रमों का उद्देश्य एक ही है, फलरूप पाक, इन सारे

---

† आत्मभूतः क्रमोऽप्यस्या यत्रेदं कालदर्शनम्। पौर्वापर्यादिरूपेण प्रविभक्तमिवस्थितम्—सोऽयं क्रियाणां क्रमः सोऽप्यात्मभूतोऽस्याः सत्तायाः। कालं नाम पदार्थान्तरं तीर्थिकाः पश्यन्ति पौर्वापर्यादिरूपेण प्रविभक्तम्। तात्पर्येण तु कालः पौर्वापर्यादिरूपेण क्रियोपाधिवशात्। क्रमाख्या हि कालशक्तिब्रह्मणो जन्यवत्सु पदार्थेषु पौर्वापर्येणावभासोपगमविधायिनी, नापरो द्रव्यभूतः कालः। वाक्यपदीय ३, ३७।

‡ न ह्यक्रियस्य कालेन विभागोऽस्ति। उक्तं च—कालानुयाति यद्द्रव्यं तदस्तीति प्रतीयते। क्रियाभेदाय कालस्तु संख्या सर्वस्य भेदिका। माधवीया धातुवृत्तिः, पृ० ६

क्रमों के समूह को क्रिया कहेंगे। और यह क्रम 'पहले' 'पीछे' काल की प्रतीति करते हैं, परन्तु यह सारे क्रम क्रिया के ही भेद हैं। इसलिये वास्तव में क्रिया ही काल है।† लोग चाहे काल का भी एक और काल कह देवें, परन्तु कथन मात्रसे काल भिन्न नहीं हो सकता।‡ जबतक सत्ता में क्रम है, तबतक उसका नाम है क्रिया। जब क्रम का लय हो जावे, तब केवल सत्ता ही कहलाती है।+

(२) व्याकरण में काल का दूसरा वाद पतञ्जलि कृत महाभाष्य में मिलता है। पतञ्जलि के मत में काल वह है जिसके द्वारा किसी मूर्ति वाले द्रव्य की वृद्धि और क्षय की प्रतीति होती है। यह काल किसी क्रिया विशेष के साथ युक्त होकर 'दिन', 'रात' बन जाता है। वह क्रिया कौनसी है, वह क्रिया सूर्य की गति है।× इस मत में यह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता कि काल का अपना स्वरूप क्या है। नागेश के मत में यहां स्पष्ट काल का स्वरूप

---

† गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्। बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते। क्रमवतामेषां क्षणानामेक फलोद्देशेन प्रवृत्तानांसकलानाँ बुद्ध्या समापादितैक्यानां क्रियात्वव्यवहारात्। माधवीया धातुवृत्तिः पृ० ९

‡ कालस्यापरं कालं निर्दिशन्त्येव लौकिकाः। न च निर्देशमात्रेण व्यतिरेकोऽनुगम्यते। वाक्यपदीय ३,८३

+ प्राप्तक्रमा विशेषु क्रिया सैवाभिधीयते। क्रमरूपस्य संहारे तत् सत्वमिति कथ्यते—वाक्यपदीय ३,३९

× येन मूर्त्तानामुपचयाश्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते, तं कालमित्याहुः। तस्यैव

क्षण धारा रूप से है, क्योंकि वृद्धि और क्षय रूप उपाधि कहे गए हैं।† परन्तु हमें यह स्पष्टता प्रतीत नहीं होती।

इनके अतिरिक्त मंजूषाकार नागेशभट्ट ने काल पर बहुत विचार किया है। परन्तु काल के विषय में उसका अपना मत क्या था, यह प्रतीत नहीं होता। केवल यह निश्चय से कहा जा सकता है कि उसने वैशेषिक के अखंड काल का खंडन किया है, जिसको ऊपर (वैशेषिक मत विचार में) दर्शाया गया है। वैशेषिक का खंडन करके वह कभी तो योगमत के क्षणवाद की ओर, कभी वाक्यपदीय के क्रियावाद की ओर और कभी सांख्य के आकाशवाद की ओर झुकता है। काल क्या है ? इसका उत्तर देते हुये वह एक स्थान में तो यह कहता है कि क्षण काल है। यह क्षण प्रकृति का परिणाम है, बहुत थोड़ी देर रहने वाला है और विभु है। उसी क्षण की वृद्धि से लव, पल, घड़ी, मुहूर्त, दिन, रात आदि व्यवहार होते हैं ‡। परन्तु उसी स्थल में नीचे जाकर नागेश कहता है कि "अथवा दिशा के समान काल

च कया-चित् क्रियया युक्तस्याहरिति रात्रिरिति भवति कया क्रियया। आदित्यगत्या। तयैवासकृदावृत्त्या मास इति संवत्सर इति च भवति, पतंजलि पाणिनि २-२-५ पर।

† अत्रोपचयादिहेतुत्वेन लक्षितस्योपाधिकभेद कथनात् स्पष्टमेवाविच्छिन्नक्षणधारारूपत्वमुक्तम्—नागेश, मंजूषा पृ० ८४६।

‡ ननु कोऽसौ कालो यस्य वर्तमानादि भेदेन त्रैविध्यमिति चेदुच्यते। प्रकृतेः परिणामस्याति भंगुरस्य विभोः क्षणस्य कालत्वात्। तस्यैव च क्षणस्य प्रचय विशेषैर्लवपलघटी मुहूर्ताहोरात्रादि व्यवहारः मंजूषा। पृ० ८३५

भी शब्द तन्मात्रा का परिणाम है । इसीलिये सांख्य शास्त्र में आकाशरूप तत्त्व में ही दिशा और काल की गणना की है"† । फिर आगे जाकर वह कहता है कि जब बिस के बाल जल जावें तो उनकी सत्ता केवल अनुमान से ही जानी जाती है । ऐसे ही कल्पित समूह में अवयव क्षणों का ज्ञान अवयवों द्वारा होता है । समूह और क्रिया दोनों अप्रत्यक्ष हैं ॐ । यहां भर्तृहरि के क्रिया-वाद का उल्लेख है । और फिर एक स्थल में वेदान्तियों के मत अनुसार कहता है कि यद्यपि ब्रह्म स्वयम् क्रमरहित है, तथापि संसार में काल की प्रतीति ब्रह्म की अविद्या शक्ति का फल है + । इससे प्रतीत होता है कि यद्यपि नागेश ने इस विषय पर बहुत विद्वत्ता प्रगट की है, परन्तु उसने वैसा विवेक प्रगट नहीं किया ।

ज्योतिष शास्त्र में काल का स्वरूप

ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में काल का थोड़ा सा परिचय दिया गया है, परन्तु वह परिचय बड़ा सूक्ष्म और महत्व से भरा हुआ प्रतीत होता है । सूर्यसिद्धान्त के मत में काल दो प्रकार का है । पहला तो वह है जो सृष्टि को बनाता और नष्ट करता है । इस काल का स्वरूप हम लोग नहीं जान

---

†: यद्वा शब्दतन्मात्र परिणाम एव दिग्वत् कालः । अतएव सांख्य शास्त्रे आकाशत्वेनैव तत्वेषु तयोर्गणनं कृतम् । मंजूषा पृ० ८४०.

ॐ बिसदाहेन तदन्तर्गतत्वात् तद्दाहोऽनुमीयते एवं चावयवशः समूहश्च क्रियाऽप्रत्यक्षैवेति स्पष्टमेवोक्तम् मंजूषा पृ० ८६२, ८६३ ।

+ किं चाक्रमब्रह्मविवर्त्तस्य विश्वस्य यदिदं क्रमेण भासनं तत्कालाविद्याशक्तिकृत मेव—मंजूषा पृ०८४१

सकते। काल का दूसरा रूप वह है जो जाना जा सकता है, और जिसका प्रयोग व्यावहारिक जगत में होता है। यह दूसरा रूप फिर दो प्रकार का है, एक स्थूल, सूक्ष्म और दूसरा मूर्त्त-अमूर्त्त †।

काल पर भिन्न भिन्न सिद्धांतों की आलोचना

पाठक गणों को ऊपर के वर्णन से प्रतीत होगा कि भारतवर्ष के दर्शनों और अन्य शास्त्रों में चार मुख्य वाद काल पर मिलते हैं:—

(१) आकाश गुणवाद। यह सांख्य का मत है। सांख्य में इस विषय पर सामग्री बहुत थोड़ी है परन्तु प्रतीत होता है कि साँख्य में काल के विशेष गुणों का निरूपण नहीं किया गया, और न ही इनका सम्बन्ध युक्ति पूर्वक आकाश निरूपण के साथ दर्शाया गया है।

(२) क्षणवाद। यह वाद योग, बौद्ध और जैन ग्रन्थ "प्रमेय कमलमार्तंड" में मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस वाद को सूक्ष्मता से दर्शाया गया है, परन्तु इस वाद में एक ऐसी त्रुटि है, जिससे इसको ग्रहण करना असम्भव सा प्रतीत होता है। वह त्रुटि यह है कि क्षणवाद को मानने से पदार्थ के साथ काल का सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। क्षण उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है।

---

† लोकानामन्तकृतकालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते॥

एकः शास्त्रान्तरं प्रमाणासिद्धो विनाशकः (स्रष्टा च) अन्यः कलनात्मकः ज्ञातुं शक्यः। स द्वितीयोऽपि मूर्त्तश्चामूर्त्तश्च। सूर्यसिद्धान्त श्लोक १०

तब काल का सम्बन्ध पदार्थ के साथ कैसे हुआ ? जो क्रम क्षण-वाद ने स्वीकार किया है, वह कल्पित है। तब भी काल के साथ वास्तविक सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। और आजकल के अपेक्षा-वाद (Relativity) की दृष्टि से तो क्षण भी कल्पित हैं। यदि कोई पदार्थ विद्यमान है, तो वह कालिक सम्बन्ध है †। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य का शरीर जो आठ वर्ष की आयु में होता है, वह पन्द्रह वर्ष की आयु में नहीं होता, जो पन्द्रह वर्ष की आयु में होता है, वह २३ वर्ष की आयु में नहीं होता। परन्तु, अपेक्षावाद के मतमें यह काल के विनाशी अंश हैं। इनके अतिरिक्त एक स्थिर अंश भी उस मनुष्य में है जिस के द्वारा वास्तव में कालिक सम्बन्ध उस मनुष्यके साथ होता है। उसी स्थिर कालिक सम्बन्ध द्वारा हम कहते हैं कि यह वही मनुष्य है जिस का रूप आठ वर्ष की आयु में यह था, पन्द्रह वर्ष की आयु में यह था,‡ इत्यादि।

---

† The relative, (as opposed to absolutist) theory holds that there are no moments; but that temporal relations hold between them. Broad: article, Time, in Encyclopaedia of Religion and Ethics.

‡ Here is a portrait of a man at eight years old, another at seventeen another at twenty-three, and so on. All these are evidently sections, as it were, three dimensional representa-

(३) क्रियावाद वैयाकरणों का मत है। क्रिया होती ही क्रम से है और इस क्रम के रूप में यही क्रिया काल है। इसके अतिरिक्त काल और कोई नहीं। क्रियावादी को इसलिये मानना पड़ेगा कि क्रिया एक क्रम अर्थात् काल के अनुसार चलती है। परन्तु इस अवस्था में क्रिया अधीन होजाती है और जिसके अधीन होती है वह द्रव्य अवश्य भिन्न मानना पड़ेगा और आजकल के अपेक्षावाद के मत में तो क्रिया भी कल्पित है। हम कल्पना करते हैं कि संसार के वृत्तान्त उत्पन्न होते हैं। वास्तव में वृत्तान्त उत्पन्न नहीं होते। वह आगे ही क्रम से विद्यमान हैं, हम केवल उनको क्रमानुसार उपलब्ध करते हैं और कह देते हैं कि ऐसा वृत्तान्त होगया।† संसार के सब वृत्तान्त काल के अनुसार पहले से ही स्थिर हैं। इसीलिये योगियों को भविष्यत् का पहले ही ज्ञान हो जाता है।

(४) चौथा वाद वैशेपिकवाद है। इसमें काल एक अखंड और नित्य अतिरिक्त पदार्थ है। शोक है कि वैशेपिक में भी काल के प्रमाण अंश पर अधिक विचार है, प्रमेय अंश पर बहुत थोड़ा परिचय दिया है। क्या काल एक नियामक शक्ति है ? क्या

tions of his four-dimensional being which is a fixed and unalterable being. H. G. Wells: Time-machin.

† Events do not happen, they are just there, and we come across them. Eddington; Space, Time and Gravitation, p. 51.

काल द्वारा सारे संसार के वृत्तान्त आगे ही स्थिर हैं, इन विषयों पर वैशेषिक में विचार नहीं किया गया। परन्तु सन्तोष की बात है कि यह विचार वेदादि धार्मिक ग्रन्थों में भली प्रकार किये गये हैं, जिनका निरूपण अब हम करते हैं।

यदि पाठकगण अथर्ववेद के दो सूक्तों (१८-५३, ५४) को देखें तो उनको प्रतीत होगा कि काल के विषय में इस वेद में कितना भारी विस्तार है।

अथर्ववेद में काल का स्वरूप

पहले हम १८, ५३, १ को लेंगे, जिसका सरल अर्थ यह है:—

काल व्यापक है। यह सात किरणों वाला होकर चलता है। इसकी हजारों आंखें हैं। इसमें बुढ़ापा नहीं है। इसमें बड़ी शक्ति है। विद्वान् इसके ऊपर चढ़ते हैं। सारे संसार इसके चक्र हैं।†

व्याख्या:—

(१) पहले यह बतलाया गया है कि काल व्यापक है। ऊपर मीमाँसा का मत दर्शाया गया है, कि काई ज्ञान नहीं जिसमें काल का अनुभव न हो। इसलिये अथर्ववेद ने काल की व्याप्ति को पहले दर्शाया है।

(२) काल की सात किरणें और हजारों आंखें हैं। इन दो विशेषणोंसे काल के अनेक रूप वर्णन किये गये हैं। सात किरणों का अभिप्राय छः ऋतु और तेरहवां मास है, जो ज्योतिष में

---

† कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः—

सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितः तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥ अथर्व वेद १८,५३,१।

प्रचलित है हजारों आंखों से काल के अनेक रूप लक्षण आदि बताए गए हैं। परन्तु साथ ही यह स्पष्ट दर्शाया गया है कि काल एक है। और यह अनेक रूप इसी काल के हैं।

(३) काल बुढ़ापे से रहित है। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है। क्षय और विनाश संसार के पदार्थों का होता है, न कि काल का। भर्तृहरि ने भी कहा है, कि काल नहीं गया, हम गये।† वैशेषिकवाद में भी कहा गया है कि काल नित्य है, परन्तु काल जरा से रहित है यह भाव स्पष्ट यहां ही होता है।

(४) काल में बड़ी शक्ति है। इस बात को वेदान्तियों ने स्वीकार किया है, कि काल अविद्या की शक्ति है, परन्तु दूसरे दर्शनों से यह प्रतीत नहीं होता। हमारा अनुभव है कि काल में बड़ी नियामक शक्ति है।

(५) "विद्वान् लोग इस पर चढ़ते हैं" अर्थात काल योगी लोगों के अधीन है। योगी लोगों को भूत भविष्यत् और वर्तमान का ज्ञान हो जाता है। योगी लोग मोक्ष की अवस्था में काल से बिलकुल स्वतन्त्र हो जाते हैं।

(६) सारे संसार इस काल के चक्र हैं। यह सब से मुख्य लक्षण काल का है। जिसका किसी भारत के दर्शन ने निरूपण नहीं किया। इस लेख का नाम भी "कालचक्र" है और हमारा अनुभव तो यह है, कि भारतवर्ष की सभ्यता और धार्मिक ग्रन्थों का बड़ा अंश इस कालचक्र शब्द से चमकता है। जहां तक हमें

† कालो न यातो वयमेव याताः॥

मालूम है, और कोई धर्म नहीं जिसमें काल को सदा के लिये आने जाने वाला (चक्र के समान) माना गया हो । परन्तु भारतवर्ष के धर्मों के अनुसार सृष्टि बनती है, नष्ट होती है, फिर बनती है । यह चक्र सदा चलता रहता है । शोक है कि दर्शनों में काल के इस मुख्य लक्षण को दर्शाया नहीं गया । शायद दर्शनों को यह लक्षण ऐसा स्पष्ट था कि उन्हें इसको दर्शाने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई । उनको यह प्रतीत नहीं था कि दूसरे धर्मों में काल की यह कल्पना है ही नहीं । वह तो सृष्टि को इसी बार उत्पन्न हुई मानते हैं ।

अब हम इससे अगले मन्त्र की ओर आते हैं, जिसका अर्थ यह है:—

काल वह है जो इन सारे संसारों को प्रगट करता है । वह प्रथम देवता है जो सब स्थानों में पहुँचता है । †

व्याख्या:—

(१) संसार को प्रगट करना यह उसी "काल चक्र" का उदाहरण है । प्रलय काल में संसार छुपा रहता है, सृष्टि के समय काल इस संसार को फिर प्रगट करता है ।

(२) ऊपर शैव आगम में दर्शाया गया है, कि तत्वों में से काल सब से प्रथम था जो उत्पन्न हुआ । यहाँ भी काल की प्रथमता दर्शाई गई है, और उसको "देवता" अर्थात् दिव्य शक्ति के नाम से पुकारा गया है ।

---

† स इमा विश्वा भुवनान्यजत्
कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ अथर्ववेद १६,५३,२

अब तीसरे मन्त्र को लीजिये। उसका अर्थ यह है:—

सारा संसार एक भरे हुए कुम्भ के समान है। इस भरे हुए कुम्भ का आधार काल है। इस काल को हम बहुत से रूपों में देखते हैं। यह काल सब संसारों में व्याप रहा है। कहते हैं कि यह काल परमात्मा में है।†

व्याख्या—

ऊपर के मन्त्र से यह स्पष्ट होता है कि सारे जगत् का आधार काल है, और काल का आधार परमात्मा है। इनसे हमको काल का क्रम स्पष्ट प्रतीत होता है।

अब हम चौथे मन्त्र को लेते हैं उसका अर्थ यह है:—

काल ही सब संसारों को खैंच लाया। वह ही सब संसारों में व्यापक हो गया। यद्यपि वह पिता था, तो भी वह इनका पुत्र हो गया है। इस जैसी और कोई दूसरी शक्ति नहीं है।‡

व्याख्याः—

(१) "काल ही सब संसारों को खैंच लाया" यह "कालचक्र" का और दृष्टान्त है। प्रलय अवस्था में संसार गुप्त से थे, उनको काल खैंच लाया।

---

† पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः। स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् अथर्ववेद, १९,५३,३

‡ स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः अथर्ववेद १९,५३,४ ।

(२) "कालयद्यपि संसार का पिता था, तो भी पुत्र हो गया"। काल संसार का कारण था, परन्तु कार्यों के साथ उसका ऐसा समीप सम्बन्ध हो गया कि वह भी कार्यों का एक भाग दीखने लगा।

(३) "इस जैसी और कोई दूसरी शक्ति नहीं है"। पहले मन्त्र में बताया गया था कि काल में बहुत शक्तियां हैं। यहां स्पष्ट रूप से दर्शाया गया कि काल जैसी और कोई शक्ति नहीं है।

अब सातवां मन्त्र विचार के योग्य है। इसका अर्थ यह है—

काल के आने पर सब लोग सुखी होते हैं।†

व्याख्या—

यह मन्त्र बड़ा अद्भुत है। प्रायः लोगों का विचार है कि कालवादी दुखवादी होते हैं। काल के चक्र में जकड़े हुए किसको सुख हो सकता है? परन्तु इस मन्त्र के द्रष्टा ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा कि यदि काल संसार का आधार है, तो संसार के सुख का भी आधार है। नीचे लिखे विचार इस भाव की पुष्टि में दिये जाते हैं:—

(१) हर एक मनुष्य को जीवन की आशा है। "जीवन और धन की आशा बूढ़े होने पर भी बूढ़ी नहीं होती।‡ परन्तु यह आशा क्या है? भविष्यत् काल के साथ मन का सम्बन्ध विशेष है। और यदि इससे गूढ़ दृष्टि से देखा जावे तो काल ही

† कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः, अथर्ववेद, १९,५३,७।

‡ जीवनाशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति।

जीवन आशा रूप रस मनुष्य में उत्पन्न करता है, यद्यपि मनुष्य को इच्छा और आशा होती है, कि मैं भविष्यत काल में जीऊं।

(२) अपने ग्रन्थ "साधना" में कवि टैगोर लिखते हैं कि मनुष्य मृत्यु के सामने होता हुआ भी हंसता है। हंसना और सुखी रहना मनुष्य का स्वभाव है। प्राणिमात्र आनन्द से ही जीते हैं।† परन्तु क्या क्षण क्षण में मनुष्य को आनन्द मिलता है ? क्या किसी बन्धु की मृत्यु का दर्शन मनुष्य को आनन्द दे सकता है ? नहीं। यह प्रायः आनन्द की आशा है जो वास्तव में मनुष्य को सुख के सन्तोष में रखती है। और यह आशा काल की शक्ति का फल है।

(३) जो कोई सुख मनुष्य को मिलता है, बिना काल के नहीं मिल सकता। कर्मों के फल भी काल पर मिलते हैं। इस लिये सुख रूपी फल की आशा मनुष्यों को काल से ही होती है। तभी हम कह सकते हैं कि "काल के आने पर सब लोग सुखी होते हैं"।

अब आठवें मन्त्र को लेकर हम इस खंड को समाप्त करते हैं। इस मन्त्र का अर्थ यह है:—

काल सबका ईश्वर है। यह काल ब्रह्मा का भी पिता था।*

इस मन्त्र में काल के महत्त्व की पराकाष्ठा दिखाई गई है। काल को ईश्वर क्यों कहा गया ? क्योंकि काल के नियमों के

---

† "आनन्दाद्ध्येवमानि सर्वाणि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जीवन्ति"

* कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः १६, ५३, ८

अधीन सब जगत् है। कर्मों का फल भी इन नियमों के अधीन है। ब्रह्मा भी काल में ही उत्पन्न हुआ, इसलिये ब्रह्मा का आधार भी काल है।

इसमें सन्देह नहीं कि यहां "ईश्वर" शब्द गौण अर्थ में समझना चाहिये। परन्तु ईश्वर शब्द का अक्षरार्थ "सामर्थ्य वाला" यहां बराबर घट सकता है। काल के नियमों की शक्ति वास्तव में प्रबल है।

ऋग्वेद में भी कुछ निरूपण काल का किया गया है। इसमें भी काल का चक्र के रूप में वर्णन किया गया है:—

ऋग्वेद में काल का निरूपण

(१) [काल] वह चक्र है जिसमें तीन नाभियां हैं। यह तीन नाभियां तीन मुख्य ऋतु अर्थात् गरमी, वर्षा और हेमन्त हैं। यह चक्र कभी पुराना नहीं होता, और न कभी शिथिल होता है। इस चक्र के आधार पर सारे संसार स्थित हैं †।

(२) सारे संसार पांच अरों वाले (अर्थात पांच ऋतुओं वाले—शिशिर और हेमन्त को एक ऋतु मान कर) चक्र पर स्थिर हैं जो सदा घूम रहा है। इस चक्र का बड़ा भारी अक्ष कभी पीड़ित नहीं होता। एक ही नाभि वाला यह चक्र कभी नहीं टूटता ‡।

---

† त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।

ऋग्वेद १, १६४, २

‡ पंचारे चक्रे परिवर्त्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः॥

ऋग्वेद १, १६४, १३

(३) कौन उस चक्र को जानता है जिसके १२ घेरे (अर्थात् १२ मास) और तीन नाभि स्थित तख्ते (अर्थात् तीन ऋतुएं) हैं †।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में संसार की उत्पत्ति के बहुत से हेतु बता कर अन्त में परमात्मा को ही वास्तव में हेतु दर्शाया गया है। इस उपनिषद् में कहा गया है कि "कुछ लोग काल को जगत का हेतु मानते हैं, कोई स्वभाव को, कोई नियति को, कोई यदृच्छा को, कोई भूतों को, परन्तु इनमें से कोई भी कारण नहीं हो सकता क्योंकि यह सब वस्तुयें पराधीन हैं, यह जीवात्मा के अधीन हैं। और जीवात्मा भी जगत का हेतु नहीं हो सकता, क्योंकि जीवात्मा सुख दुख के अधीन है"‡ इस स्थल में हमको काल का विशेष लक्षण नहीं मिलता, परन्तु इससे यह अवश्य प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतवर्ष में ऐसे लोग भी थे जो केवल काल को संसार का हेतु मानते थे। मैत्रायण + उपनिषद् में दो प्रकार का ब्रह्म निरूपण किया गया है, एक काल वाला और एक काल रहित। काल रहित ब्रह्म वह है, जो सूर्य की उत्पत्ति से पहले होता है। काल वाला वह है जो सूर्य की उत्पत्ति के साथ

उपनिषदों में काल का निरूपण

---

† द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ त तच्चिकेत।
ऋग्वेद १, १६४, ४८

‡ कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या। संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुख हेतोः ॥ श्वे० उ० १-२

+ मै० उप० ६-१५।

साथ होता है। यहाँ भी काल का ब्रह्म के साथ विशेष सम्बन्ध दर्शाया गया है।

रामायण में काल का निरूपण ऐसे किया गया गया है:—

रामायण में काल का निरूपण

(१) कोई किसी का कर्त्ता नहीं। काल ईश्वर की भी आज्ञा में नहीं। काल अपने स्वभाव से ही चलता है। काल किस के आधीन है ?[१]

यहां काल एक स्वतन्त्र शक्ति है इस विषय को दर्शाया गया है। इसमें चाहे कवि की अतिशयोक्ति हो, परन्तु यह अवश्य प्रतीत होता है कि कवि ने काल की शक्ति को विशेष रूप से अनुभव किया था।

(२) रामायण के उत्तरकांड में काल स्वयम् एक तपस्वी की मूर्ति धारण करके श्रीरामजी की सेवा में आता है, और कहता है:—"हे बड़े बलवाले महाराज ! सुनो, जिस लिए मैं आया हूँ। मुझे ब्रह्मा ने भेजा है। हे शत्रुओं के पुरों को जीतने वाले ! मैं पिछले जन्म में आपका पुत्र था। हे वीर ! मैं माया द्वारा उत्पन्न हुआ हुआ काल हूँ, जो सबका संहार करने वाला हूँ। भगवान् लोकों के पति ब्रह्मा ने कहा है, कि आपका लोगों की रक्षा करने का समय अब हो चुका है (अर्थात् अब आपकी आयुः प्रायः व्यतीत हो चुकी है)। माया द्वारा स्वयम् लोगों को पहले संहार

[१]न कर्त्ता कस्यचित्कश्चिन्नियोगे नापि चेश्वरः।
स्वभावे वर्त्तते कालः कस्य कालः परायणः ॥ रामायणः ॥ ४, २४, ९

करके फिर पहले पहल आपने मुझे उत्पन्न किया था। नाभि से सूर्य के समान कमल उत्पन्न करके आपने मुझे उत्पन्न करके लोगों का सारा कर्म मुझे समर्पित किया था।"†

यहां चाहे लोग इसे कवि का अलङ्कार वर्णन करें, चाहे इस विशेष रूप में काल श्रीरामजी की सेवा में प्रगट न हुआ हो, तो भी यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि योगियों के भविष्यत् काल ज्ञान के समान श्रीराम जी को भी किसी न किसी रूप में यह ज्ञान हो गया था, कि अब उनका समय आ पहुँचा है। इस स्थल में यह विशेष करके निरूपण किया गया है कि काल पहले पहल संसार में उत्पन्न हुआ, और उसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य की आयु नियत है, और उसके अधीन है।

महाभारत में काल का निरूपण

महाभारत में काल को बड़े विस्तार से निरूपित किया गया है। अनुशासन पर्व में गौतमी, शिकारी, मृत्यु और काल का एक संवाद आता है। गौतमी एक बुढ़िया स्त्री थी। उसके पुत्र

---

†संक्षिप्य हि पुरा लोकान्मायया स्वयमेवहि। महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः। पिता महश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः। समयस्ते कृतः सौम्य लोकान् परिरक्षितुम्॥

शृणु राजन् महसत्व यदर्थमहमागतः। पितामहेन देवेन प्रेषितो ऽस्मि महाबल। तवाहं पूर्व के भावे पुत्रः परपुरंजय। माया संभावितो वीर कालः सर्व समाहरः॥

पद्मे दिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेशितम्॥ रामायण उत्तरकांड १०४ सर्ग, १-९ श्लोक।

को साँप ने डस लिया, और पुत्र मर गया। उस साँप को बांध कर एक शिकारी गौतमी के पास ले-आया, और गौतमी से पूछने लगा कि इस साँप को कैसे मारूं। गौतमी ने कहा कि इस साँप को मत मारो। इस साँप के मरने से मेरा पुत्र जियेगा नहीं। उलटा साँप को मारने से पाप होगा। शिकारी ने फिर कहा कि साँप के मरने पर गौतमी! तेरा शोक दूर हो जावेगा, इसलिये इसे मारने दे। गौतमी ने फिर कहा कि साँप पर दया करो। इस पर क्षमा करो। इस पर साँप ने कहा कि मुझे मृत्यु ने इसे डसने की प्रेरणा की थी। इस मृत्यु के वचन से मैंने इसे डसा है, न क्रोध से और न इच्छा से।

इस पर मृत्यु ने कहा, "हे साँप, कालने मुझे प्रेरणा की, और मैंने तुझे प्रेरणा की। इस बालक के विनाश का हेतु न तो मैं हूँ, न तू है। जैसे वायु मेघों को इधर उधर खैंचती है, वैसे ही मैं भी मेघ के समान काल के वश में हूँ। प्राणियों में सब भाव, सात्विक, राजस और तामस काल के रूप में चेष्टा करते हैं। स्वर्ग में या पृथिवी में स्थावर जंगम सब काल के रूप हैं। यह सारा जगत काल का रूप है। संसार की सब प्रवृत्तियाँ, निवृत्तियां और विकार काल के रूप हैं, हे साँप! सूर्य्य, चन्द्रमा, विष्णु, जल, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथिवी, मित्र, मेघ, वसु, अदिति, नदियों, समुद्रों, भाव, अभाव—सब पदार्थ काल द्वारा उत्पन्न होते हैं, और उसी के द्वारा फिर उनका संहार होता है। हे साँप यह जानकर तू मुझे क्यों दोष वाला समझता है? यदि

इस अवस्था में मुझ पर दोष आता है, तो तुझ पर भी वैसे ही आता है † "।

जब यह धर्म सम्बन्धी संशय उत्पन्न हो रहा था, तो उसी समय काल आ पहुँचा। काल ने मृत्यु, शिकारी और साँप को कहा—"हे शिकारी, न मैं, न मृत्यु, न साँप इस प्राणी के मरने के पाप भागी हैं। हमने इसकी मृत्यु की प्रेरणा नहीं की। हे शिकारी (इसका नाम अर्जुनक था), जो कर्म इसने किया था, उस कर्म ने हमें प्रेरणा की। और कोई हेतु इसके विनाश का नहीं है। इस

---

† प्रचोदितोऽहं कालेन पन्नगत्वाम चूचुदम।
विनाश हेतुर्नास्य त्वमहं न प्राणिनः (शिशोः)॥
यथावायुर्जलधरान्विकर्षति ततस्ततः।
तद्वज्जलदवत्सर्प कालस्याहं वशानुगः।
सात्विका राजसाश्चैव तामसा ये च केचना।
भावाः कालात्मकाः सर्वे प्रवर्तन्तेह जन्तुषु॥
जङ्गमाः स्थावराश्चैव दिवि वा यदि वा भुवि।
सर्वे कालात्मकाः सर्वे कालात्मकमिदं जगत्॥
प्रवृत्तयश्च लोकेऽस्मिंस्तथैव च निवृत्तयः।
तासां विकृतयोयाश्च सर्वं कालात्मकं स्मृतम्॥
आदित्यश्चन्द्रमा विष्णु रापो वायुः शतक्रतुः।
अग्निः ख पृथिवी मित्रः पर्जन्यो वसवोऽदितिः॥
सरितः सागराश्चैव भावाभावो च पन्नग।
सर्वे कालेन सृज्यन्ते ह्रियन्ते च पुनः पुनः॥
एवं ज्ञात्वा कथं मां त्वं स दोषं सर्प मन्यसे।
अथ चैवं गते दोषे मयि त्वमपि दोषवान्॥

महाभारत—अनुशासन पर्व १, २०-२७

को इसके अपने कर्म ने मारा है। जो कर्म इसने किया, उससे यह मृत्यु को प्राप्त हुआ। कर्म ही इसके विनाश का हेतु है। हम सब कर्म के वश हैं †।

यह संवाद ऐसा है जिसको पढ़ कर चित्त व्याकुल हो जाता है। भारतवर्ष के प्रायः सब शास्त्रों ने कर्म को प्रधान माना है। परन्तु अब पाठकों ने बहुत से स्थल ऊपर देखे हैं, जहां काल को सब का आधार, सब से अधिक शक्ति वाला निरूपण किया गया है। और महाभारत के ऊपर दिये गए स्थल में भी काल को सारे संसार का कर्ता बताया है, और जो कर्म के पक्ष में स्थल आया है, उसमें कालकी इस शक्ति का निषेध नहीं किया गया, परन्तु यह स्पष्ट कहा गया है कि काल कर्म के वश है। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो काल और कर्म आपस में ऐसे जकड़े हुए हैं कि यह कहना बहुत कठिन है कि आया कर्म काल के वश है अथवा काल कर्म के वश है। प्रत्येक कर्म किसी काल के अनुसार ही फलता है, काल से स्वतन्त्र होकर कर्म कभी फलता नहीं। दूसरी ओर जैसा कर्म किया हुआ हो, काल भी वैसे ही अनुकूल या

---

† न ह्यहं नाप्ययं मृत्युर्नायं लुब्धक पन्नगः।
किल्बिषी जंतुमरणे न वयंहि प्रयोजकाः॥
अवरोधदयं कर्म तन्नोऽर्जुनक चोदकम्।
विनाशहेतुर्नान्योऽस्य वध्यतेऽयंस्वकर्मणो॥
यदनेन कृतं कर्म तेनायं निधनं गतः।
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्म वशा वयम्॥
महाभारत—अनुशासन पर्व १ ७०-७२

प्रतिकूल होता है। कर्म का कालचक्र के साथ समीप सम्बन्ध कर्म के विचारकों ने स्वीकार किया है। जैसे इस विषय पर तिलक महोदय लिखते हैं—"आज का कर्म कल भोगना पड़ता है, और कल का परसों......इस तरह यह भव चक्र सदैव चलता रहता है †।" फिर आगे जा कर लिखते हैं "जब ऐसा मान लिया जाय कि मनुष्य के मन की सब प्रेरणायें पूर्व कर्मों से ही उत्पन्न होती हैं, तब तो यही अनुमान करना पड़ता है कि उसे......सदैव भव-चक्र में ही रहना चाहिये ‡।" और फिर "संसार के आरम्भ से प्रत्येक प्राणी नामरूपात्मक अनादि कर्म की कैद में बंध सा गया है +। इन स्थलों से भी यही प्रतीत होता है कि जब तक कर्म है, तब तक उसका कालचक्र के साथ ऐसा समीप सम्बन्ध है, कि उस चक्र से उसका विकास नहीं हो सकता। अब पाठक गण इस लेख के शीर्षक "कालचक्र" के भाव को समझेंगे। इस गौतमी आदि के संवाद का अन्तिम भाग और भी आश्चर्य में डालता है। भीष्म ने कहा "हे राजन् यह सुन कर शान्ति को प्राप्त हो। शोक मत कर। सब लोग अपने कर्मों से उत्पन्न लोकों को जाते हैं। यह कर्म तू ने नहीं किया, न दुर्योधन ने। यह काल है जिसने यह कर्म किया है, जिससे यह राजा मारे गये हैं ×।" "काल कर्म के

† गीतारहस्य पृ० २६६

‡ गीतारहस्य पृ० २७८

+ गीतारहस्य पृ० २६७

× एतच्छ्रुत्वा शर्म गच्छ मा भूः शोक पैसेन्द्रनुप-
स्वकर्म प्रत्ययां लोकान् सर्वे गच्छन्ति वै नृप ॥

वश में है" यह स्पष्ट स्वीकार करके अन्त में ग्रन्थकर्ता कहता है कि यह सब काल का ही कर्म है। प्रतीत यह होता है कि कर्म का प्रभाव तो ग्रंथकर्ता पर बड़ा था, परन्तु वह काल के महत्त्व को भी स्वीकार करता था। इसलिये उसने यह कह दिया कि यह सब कर्म काल का था। वास्तव में यह भाव भी हमारे ऊपर के मत की पुष्टि करता है कि कर्म जबतक है तबतक वह कालचक्र से नहीं निकल सकता। अब हम महाभारत के कुछ और स्थलों को लेते हैं, जिन में "कालचक्र" की महिमा को वर्णन किया गया है:—

शान्ति पर्व में लिखा है कि "कर्म से कुछ नहीं मिलता, न यज्ञ से। न कोई मनुष्य का कोई दाता है। विधाता ने क्रम से सब कुछ नियत कर दिया है। मनुष्य सब कुछ काल द्वारा प्राप्त करता है। मनुष्य काल के बिना बुद्धि और शास्त्रों के पढ़ने से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। कभी कभी मूर्ख को भी धन मिल जाता है, काल कर्म से बिलकुल स्वतन्त्र है। दुख के कालों में शिल्प मन्त्र और औषधियां कुछ फल नहीं देतीं, वही जब काल में इकट्ठी की जाती हैं तो सिद्ध होती हैं, और सुख के काल में वृद्धि को प्राप्त करती हैं[१]।

नैव त्वया कृतं कर्म नापि दुर्योधनेन वै।
कालेनैतत्कृतं विद्धि निहिता येन पार्थिवः॥
महाभारत, अनुशासन पर्व १। ८१। ८२

[१] न कर्मणा लभ्यते चेज्यया वा नाप्यस्ति दाता पुरुषस्य कश्चित्।
पर्याय योगाद्विहितं विधात्रा कालेन सर्वं लभते मनुष्यः॥
न बुद्धिशास्त्राध्ययनेन शक्यं प्राप्तुं विशेषं मनुजैरकाले।

पाठक यहाँ के दो वाक्यों पर विचार करें, "कर्म से कुछ नहीं मिलता", और "काल कर्म से बिलकुल स्वतन्त्र है।" इन वाक्यों से कुछ पाठक कह उठेंगे कि यह दो वाक्य अनुशासन पर्व के संवाद से विलकुल विरुद्ध हैं। वहां तो काल को कर्म के वश में बताया गया है, और यहां काल को प्रधान माना है, और स्पष्ट कहा है कि कर्म से कुछ नहीं मिलता। परन्तु हमारे विचार में यह केवल लेखशैली है, और दर्शाती है कि इस प्रकार के स्थल सदा इकट्ठे विचार करने चाहियें। यदि कोई मनुष्य केवल इसी स्थल को देखे, और अनुशासन पर्व के स्थल को न देखे तो उसको अवश्य भ्रान्ति होगी। परन्तु इस स्थल को भी यदि ध्यान से पढ़ा जावे तो प्रतीत होगा, कि यहां भी हमारे मत 'कालचक्र' को वर्णन किया गया है, अर्थात् काल और कर्म ऐसे जकड़े हुए हैं, कि वह एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। क्योंकि इसी स्थल में कहा गया है:—

"वही जब काल में इकट्ठी होती हैं तो सिद्ध होती हैं।" अर्थात् प्रत्येक कर्म का फल मिलता है, परन्तु काल में। सो यह एक लेखशैली है, जिसमें ग्रन्थकर्त्ता अपने किसी भाव को सिद्ध करने के लिये उसके पक्ष में बड़े बलवान् हेतु प्रगट करता है, और दूसरे पक्ष को गौण रूप में प्रगट करता है। आगे चल कर उसी शान्ति पर्व का स्थल कहता है:—"काल

मूर्खोऽपि चाप्नोति कदाचिदर्थान् कालो हि कार्यं प्रतिनिर्विशेषः॥
न भूति कालेषु फलं ददन्ति शिल्पानि मन्त्राश्च तथौषधानि।
तान्येव कालेन समाहितानि सिद्धयन्ति वर्द्धन्ति च भूतिकाले॥
महाभारत शान्तिपर्व, २२, २६, ७

से वायु शीघ्र चलती है, काल से वृष्टि मेघों में आती है। काल से जल कमलों से भरा जाता है, काल से वृक्ष वनों में फलते हैं। काल से काली और सफेद रात्रियां होती हैं। कालसे चन्द्रमा का मण्डल पूर्ण होता है। काल के विना वृक्षों को पुष्प और फल नहीं लगते। काल के वेग के विना नदियां नहीं चलतीं। काल के विना पक्षी, सांप, मृग, हाथी, और पर्वतों के पशु मस्त नहीं होते। काल के विना स्त्रियों को गर्भ नहीं होता। विना काल के शीत, गर्मी और वर्षा नहीं आतीं। काल के विना न कोई मरता है न जन्म लेता है, काल के विना बालक नहीं बोलता। काल के विना कोई भी यौवन को प्राप्त नहीं होता। काल के विना बोया हुआ बीज नहीं उगता।"† आगे चलकर उसी स्थलमें ग्रन्थकार लिखते हैं "काल के विना सूर्य संयोगको प्राप्त नहीं होता, (अर्थात् चढ़ता नहीं), काल के विना सूर्य अस्तगिर को प्राप्त नहीं होता। काल के विना चाँद और बड़ी तरंगों वाला सूर्य बढ़ते घटते नहीं। यह

---

†कालेन शीघ्राः प्रवहन्ति वाताः कालेन वृष्टिर्जलदानुपैति।
कालेन पद्मोत्पलवज्जलं च कालेन पुष्यन्ति नगेषु वृक्षाः॥
कालेन कृष्णाश्च सिताश्च रात्र्यः कालेन चन्द्रः परिपूर्णबिम्बः।
नाकालतः पुष्पफलं द्रुमाणां नाकालवेगाः सरितो वहन्ति॥
नाकालमत्ताः खगपन्नगाश्च मृगद्विपाः शैलमृगाश्च लोके।
नाकालतः स्त्रीषु भवन्ति गर्भा नायान्त्यकाले शिशिरोष्णवर्षाः॥
नाकालतो म्रियते जायते वा नाकालतो व्याहरते च बालः।
नाकालतो यौवनमभ्युपैति नाकालतो रोहति बीजमुप्तम्॥

महाभारत, शान्ति पर्व २५-८-११

असह्य काल का क्रम सब को लगता है, काल से पक कर सब राजा मर जाते हैं।)"†

शान्ति पर्व में एक और स्थल भी है, जिसमें पाप भी काल द्वारा बताया गया है:—"जब कोई दुरात्मा जो कुछ पाप क्रुद्ध होकर करता है, वह काल से प्रेरित होकर समझता है कि मैं यह कर्म कर रहा हूँ। शिकार, जुआ, स्त्रीसमागम, मद्यपान इत्यादि जो बुरे व्यसन विद्वानः ने निन्दित किये हैं, इन व्यसनों में अच्छे पढ़े लिखे मनुष्य भी फँस जाते हैं। काल द्वारा ही सब भूतों को इस प्रकार शुभ, अशुभ अर्थ प्राप्त होते हैं, (और) कोई निमित्त प्रतीत नहीं होता।"‡ यह भाव भारतवर्ष के दर्शनों और भारतवर्ष की सभ्यता के विरुद्ध प्रतीत होता है। पाप तो मनुष्य के अपने बुरे विचारों द्वारा होते हैं, परन्तु यहाँ सारा आक्षेप काल पर ही किया गया है। यहां भी ग्रन्थकर्त्ता की लेखशैली समझिये।

---

†नाकालतो भानुरुपैति योगं नाकालतोऽस्तं गिरिमभ्युपैति।
नाकालतो वर्धते हीयते च चन्द्रः समुद्रोऽपि महोर्मिमाली॥
सर्वानेवैष पर्यायो मर्त्यान् स्पृशति दुःसहः।
कालेन परिपक्वा हि म्रियन्ते सर्वपार्थिवाः॥ शान्ति पर्व २९,१२,१४

‡अहमेतत्करोमीति मन्यते कालेनोदितः।
यद्यपिष्टमसंतोषाद्दुरात्मा पापमाचरेत्॥
मृगयाक्षाः स्त्रियः पानं प्रसंगा निन्दिता बुधैः।
दृश्यन्ते पुरुषाश्चात्र संप्रयुक्ता बहुश्रुताः॥
इति कालेन सर्वार्थानीप्सितानिहि।
स्पृशन्ति सर्वभूतानि निमित्तं नोपलभ्यते॥ शान्ति पर्व,२८.३०-३२

जो जो पाप मनुष्य करता है, वह भी कार्य कारण भाव के चक्र में समय पर ही होता है। काल का सम्बन्ध बुरे भले सब कर्मों के साथ होता है। और कारण और कार्य दोनों के साथ काल का सम्बन्ध है जब कोई बुरी वासना पहले उत्पन्न हुई, तो वह भी किसी काल में हुई, जब वही वासना बुरे काम में प्रगट हुई, तब भी काल विशेष में प्रगट हुई। अर्थात् कालचक्र के साथ मनुष्य की वासनाओं का भी बड़ा समीप सम्बन्ध है। इस विषय में हम फिर तिलक महोदय के वचन की ओर पाठक के ध्यान को खैंचते हैं:—"आज का कर्म कल भोगना पड़ता है, और कल का परसों......इस तरह यह भव चक्र सदैव चलता रहता है।"† हमें तो यहां यही अभिप्राय प्रतीत होता है। कालचक्र की महिमा ग्रन्थ कर्त्ता ने यहां भी वर्णन की है।

भागवत में काल का निरूपण

भागवत पुराण में काल को इस प्रकार से वर्णन किया है:—"उस (देव) को पांच वर्ष तक बलि दो, जो काल के नाम से यज्ञों को स्वर्गादि फल से युक्त करता है, जो सृष्टि की शक्ति को बहुत प्रकार से अपनी शक्ति द्वारा प्रकट करता है, जो मनुष्य की भ्रान्ति की निवृत्ति के लिये आकाश में घूमता है, और जो एक प्रकार का तत्त्व (भूत) है"‡ यहां काल को सूर्य्य के साथ

†गीतारहस्य पृ० २६६

‡ यः सृज्य शक्ति मुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या,
पुंसोऽभ्रमाय दिविधावति भूतभेदः।

एक कर दिया गया है, और उसकी शक्ति को स्वीकार किया है।
फिर एक और स्थल में कहा है—"भगवान् काल की गति को भगवान् ही जानता है। योगी योग से सिद्ध दृष्टि से जगत् को देखते हैं।"† इन दोनों स्थलों से प्रतीत होता है कि भागवत ने काल को न केवल भगवान् माना है, परन्तु उसकी पूजा (बलि) का विधान भी किया है। इससे हमें प्रतीत होता है कि भारतवर्ष के धार्मिक ग्रन्थों में काल का महत्त्व अधिक से अधिक अनुभव किया गया है।

कूर्म पुराण में काल का निरूपण

कूर्म पुराण में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की भी काल की अधीनता इस प्रकार वर्णन की गई है—"ब्रह्मा विष्णु और शिव का (प्रलय काल में) प्रकृति में लय और फिर उत्पत्ति काल के योग से होती है। इस प्रकार ब्रह्मा, सारे भूत, विष्णु और महादेव काल द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, और वही काल उनको फिर ग्रस लेता है। यह भगवान् काल अनादि, अनन्त अजर और अमर

कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वं,
स्तस्मै बलिं हरत वत्सरपंचकाय ॥
भागवत पुराण ३, १०, १२

† भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु।
विश्वं विचक्षते धीरायोगराद्धेन चक्षुषा ॥
भागवत, ३, १०, १७

है। सर्वगत, स्वतन्त्र और सबका आत्मा होने के कारण काल महेश्वर है। ब्रह्मा, शिव और विष्णु तो अनेक हैं (क्योंकि वह समय समय पर फिर उत्पन्न होते हैं) परन्तु भगवान् काल एक ही है, वही ईश और कवि है। यह श्रुति है" ।† इस स्थल में काल की एकता और सब देवताओं से ऊपर अवस्था को वर्णन किया गया है।

मनुस्मृति में काल की उत्पत्ति ऐसे वर्णन की गई है:—

मनुस्मृति में काल की उत्पत्ति

भगवान्ने जब संसारको रचनेकी इच्छा की तो उसने काल, कालके विभागों, नक्षत्रों, और ग्रहों को रचकर सृष्टि को उत्पन्न किया।† यहां भी सृष्टि की उत्पत्ति में काल का वर्णन पहले है।

---

† ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौलयः।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च संभवः॥
एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः।
कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः॥
अनादिरेष भगवान् कालोऽनंतोऽजरोऽमरः।
सर्वगतत्वात्स्वतंत्रत्वात्सर्वात्मत्वान्महेश्वरः॥
ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः।
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुतिः॥
कूर्म पुराण ५, १८—२१

† कालं कालविभक्तिं च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः॥
मनु० १-२४,२५

संस्कृत साहित्य में भी स्थान २ पर काल का वर्णन आया है।

संस्कृत साहित्य में काल का वर्णन

हम उन वचनों को लेंगे जिनमें काल और कर्म का समीप सम्बन्ध दर्शाया गया है। एक कवि कहता है:—

न शरीर, न कुल, न शील, न विद्या, न यत्न से की हुई सेवा फल देते हैं। केवल पुरुष के भाग्य, जो पिछले तप से इकट्ठे किये गये हों, वृक्षों के समान काल पर फलते हैं।†

एक और कवि कहता है:—

जैसे पुष्प और फल बिना प्रेरणा किये गये अपने काल को उल्लंघन नहीं करते, ऐसे ही पहले किया गया कर्म उल्लंघन नहीं किया जा सकता।"*

ऊपर के विचारों से नीचे लिखे हुए मुख्य फल मिलते हैं:—

उपसंहार

(१) काल एक है। इसको देख कर कि संसार में वृक्ष आदि नियत समय पर

† नैवाकृति फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्यापि नैव च यत्न कृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्व तपसा किल सञ्चितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥

* अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वं कालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम्॥

फलते हैं, प्रतीत होता है कि एक बड़ी सत्ता इस संसार के भीतर कार्य कर रही है जिसके द्वारा प्रत्येक वृत्तान्त अपने समय पर होता है। इन अनगिनत कार्यों के एक ही कारण मानने में लाघव है। अनेक काल मानने में बड़ा भारी गौरव होगा।

(२) परमार्थ में जाकर उस काल का क्या स्वरूप है उसको हम जान नहीं सकते। इस विषय में हमें सूर्यसिद्धान्त के कर्ता के अनुसार चलना होगा। परन्तु व्यावहारिक जगत में हमको यह मानना पड़ेगा कि जिससे "पहले" "पीछे" का ज्ञान होता है, और जिसके द्वारा संसार का प्रत्येक कार्य अपने समय पर होता है वह काल है।

(३) संसार में (मीमांसा मत और आजकल के अपेक्षावाद के अनुसार) प्रत्येक कार्य के साथ कालिक सम्बन्ध है। कोई ज्ञान ऐसा नहीं जिसके साथ काल का सम्बन्ध न हो। कोई पदार्थ ठीक तरह जाना नहीं जा सकता जबतक कि उसका कालके साथ सम्बन्ध न जाना जाय कि यह किस काल में हुआ है। पदार्थों के यथार्थ ज्ञानके लिये काल ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है नहीं तो हमारा ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

(४) काल के वृत्तान्त चक्र के समान आते और जाते हैं। ऋतुओं का आना जाना तो स्पष्ट ही है, परन्तु सारे ब्रह्माण्डों की गति भी वैसे ही है। इस प्रकार की चक्र के समान संसार की गति का परिचय हमें भारतवर्ष के धार्मिक ग्रन्थों से मिलता है। क्या वास्तव में काल चक्र का स्वरूप है, इस पारमार्थिक अवस्था

को हम नहीं जानते। परन्तु व्यावहारिक जगत् ऐसा ही प्रतीत होता है।

(५) इस कालचक्र का कर्म के साथ बड़ा समीप सम्बन्ध है। काल और कर्म ऐसे जकड़े हुए हैं कि उनको अलग करना असम्भव सा प्रतीत होता है। इसी विचार के आधार पर व्याकरण ग्रन्थ वाक्यप्रदीप में क्रिया ही को काल माना है। परन्तु क्रिया और काल के अभेद मानने से हमारी बुद्धि की तुष्टि नहीं हो सकती, क्योंकि हम देखते हैं कि क्रिया भी काल के अनुसार चलती है। क्रिया के लक्षण भिन्न हैं, काल के भिन्न हैं, यद्यपि दोनों का सम्बन्ध अलग नहीं हो सकता।

(६) भारतवर्ष के धार्मिक ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि काल एक बड़ी भारी नियामक शक्ति है, जिसके अधीन ब्रह्मादि सब देवता हैं। वास्तव में यह शक्ति नित्य है, यद्यपि व्यावहारिक जगत् के दर्शाने के लिये इसकी उत्पत्ति को माना गया है। यह शक्ति सारे जगत् का आधार है।

(७) संसार के सब वृत्तान्त काल के अधीन ऐसे नियत हैं कि उनका वास्तव में स्थिर मान लेवें तो कोई दोष न होगा। इस काल द्वारा नियति का पहले ही ज्ञान योगियों को होजाता है, जैसे रामायण में श्रीराम जी को पहले ही यह ज्ञान होगया था कि उनका समय अब आगया है।

॥ समाप्त ॥

शारदा मन्दिर की अन्य पुस्तकें